ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-5 No. 2 January–December 2020

स्वयं प्रकाश के उपन्यासों में यथार्थवादी दृष्टि

हरिओम कुमार
शोधार्थी, हिन्दी–विभाग,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

कथा–साहित्य की रचना के लिए यथार्थ प्राण–तत्त्व है। इसके अभाव में कथा–रचना विश्वसनीय नहीं हो पाएगी। इसलिए कहा भी जाता है कि उपन्यास में नाम के सिवा सब कुछ यथार्थ होता है। उपन्यास के लिए यथार्थवादी दृष्टि की आवश्यकता पर विचार करते हुए सर्वप्रथम आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी याद आते हैं जिन्होंने उपन्यास के लिए यथार्थवाद की महत्ता प्रतिपादित करते हुए एक निबन्ध में कहा है कि "...मैं यथार्थवाद का विरोधी नहीं हूँ। उलटे, जैसा कि मैं आगे स्पष्ट करने जा रहा हूँ, उपन्यास नामक साहित्यांग के यथार्थवादी होने में ही उसकी सफलता मानता हूँ। कविता यथार्थ की उपेक्षा कर सकती है, संगीत यथार्थ को छोड़कर भी जी सकता है, पर उपन्यास और कहानी के लिए यथार्थ प्राण है। उसके न रहने से उपन्यास और कहानी भी प्राणहीन वस्तु बन जाती है।"[1] वस्तुतः यथार्थवाद आज के उपन्यासकारों की आवश्यकता है। उपन्यास में यथार्थवाद सच की खोज करने की कोशिश करता है। वह इस मान्यता पर आधारित है कि मानव–जीवन का सच मानव और समाज से उसके सम्बन्ध के बोध के माध्यम से ही पाया जा सकता है। जिस उपन्यासकार की यथार्थवाद पर जितनी गहरी पकड़ होगी, वह जीवन के सच का साक्षात्कार भी उतनी ही गहराई से कर पाएगा और उसकी कृति उतनी ही विश्वसनीय बन पाएगी। समाज की जड़ता खत्म कर रचनात्मकता और क्रियाशीलता पैदा करने के लिए यथार्थवाद नितान्त जरूरी उपक्रम है। सामाजिक यथार्थ और सच की अभिव्यक्ति के लिए यथार्थवाद की आवश्यकता महसूस करते हुए प्रतिष्ठित आलोचक मैनेजर पाण्डेय ने कहा है— "समाज के ज्ञान की आवश्यकता उन्हें होती है जो समाज को बदलकर उसे बेहतर बनाना चाहते हैं। यथार्थवादी उपन्यास ऐसे लोगों को सामाजिक वास्तविक और सच्चाई का ज्ञान देकर उन्हें क्रियाशील बनाता है। इसलिए जो यथास्थिति के पोषक हैं वे यथार्थवाद के विरोधी होते हैं। आज के समय में यथार्थवाद पहले से अधिक जरूरी है।"[2] पाण्डेय जी के इस कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि प्रतिबद्ध उपन्यासकार के लिए यथार्थवाद नितान्त आवश्यक है। यथार्थवादी दृष्टि लेखक को समाज के प्रति अधिक जिम्मेदार बनाती है।

कथाकार स्वयं प्रकाश समाज ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया को सुन्दर बनाने हेतु प्रयत्नशील हैं, जिसके पीछे काम करती है यथार्थवादी दृष्टि। इसी दृष्टि के कारण उन्हें हमेशा यह चिन्ता बनी रहती है कि यह दुनिया रहने लायक और अधिक सुन्दर कैसे बनेगी। अपने कथा–साहित्य में वे इसी के लिए संघर्ष करते नजर आते हैं। अपने लेखन–काल में उन्होंने पाँच उपन्यासों की रचना की है। उन सभी में हमें उनकी यथार्थवादी दृष्टि के दर्शन होते हैं।

Copyright © 2020 Authors

1982 ई॰ में प्रकाशित स्वयं प्रकाश के प्रथम उपन्यास 'ज्योतिरथ के सारथी' से लेकर 2004 ई॰ में प्रकाशित अन्तिम उपन्यास 'ईंधन' तक, सबमें यथार्थवाद मौजूद है। यहाँ इन उपन्यासों में अभिव्यक्त उनकी यथार्थवादी दृष्टि को परखने की कोशिश की जा रही है।

स्वयं प्रकाश का प्रथम उपन्यास 'ज्योतिरथ के सारथी' वामपंथी राजनीति की दशा और दिशा का बोध करानेवाली यथार्थवादी दृष्टि से लिखी गयी रचना है, जिसमें लेखक ने भारत के समाजवादी–साम्यवादी दलों के संघर्ष को प्रामाणिक रूप से अभिव्यक्त किया है। इन दलों के आन्तरिक भेदों और मत–भिन्नता का एक विहंगम दृश्य प्रस्तुत किया है। सुधीश, चारुदा, नागसेन, किरीट, कर्णिक, ज्योति और कॉमरेड अब्दुल्ला के माध्यम से वामपंथी राजनीति के आन्तरिक द्वन्द्वों को व्यंजित किया गया है। आजादी के बाद स्वतंत्रता–पूर्व के सारे सपने ध्वस्त नजर आते देख सहृदय कथाकार की आत्मा विगलित होने लगी। जॉन की जगह गोविन्द को शोषण करते देख उन्हें काफी दुःख हुआ। देश और समाज में वही पिछड़ापन, वही अशिक्षा और वही बदहाली है। गाँव के भोले लोग छल–कपट नहीं जानते हैं, अपने प्रति हो रहे शोषण का हाल नहीं जानते हैं। इसलिए "सब खुश हैं। सब संतुष्ट हैं। सूखे के बावजूद। अकाल के बावजूद। शोषण के बावजूद।"[3] इसकी वजह यह है कि देश आजाद हो गया है, लेकिन आजादी का लाभ चन्द लोगों को ही मिल रहा है, जिसे सामान्य जनता गहराई से नहीं जान पाती है। स्वयं प्रकाश की यथार्थवादी दृष्टि इस विसंगति का अनुभव करती है। इसके अन्त के लिए वे क्रान्ति की आवश्यकता महसूस करते हैं। कर्णिक के माध्यम से सुधीश की जिज्ञासा शान्त करते हुए कहलवाया जाता है— "हम कौन लोग हैं? यही जानना चाहते हो न तुम? बेशक हम मार्क्सवादी लोग हैं। समाजवाद–साम्यवाद के लिए क्रान्ति चाहने–करने वाले। तब हम भारत के किसी भी साम्यवादी दल में शामिल क्यों नहीं हैं? पहले एक ही पार्टी थी। बाद में सी॰पी॰आई॰ और सी॰पी॰एम॰ दो हुईं। बाद में सी॰पी॰एम॰ से सी॰पी॰एम॰एल॰ निकली जिसने किसान समस्या को केन्द्र में रखकर नक्सलवाड़ी आन्दोलन चलाया।"[4] इस उपन्यास में वामपंथी राजनीति की यथार्थवादी दृष्टि को केन्द्र में रखकर लेखक ने पार्टी की राजनीति का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया है। इसी आधार–भूमि पर आगे चलकर उन्होंने अपना प्रसिद्ध उपन्यास 'बीच में विनय' लिखा। 'बीच में विनय' के बीज यहाँ विद्यमान हैं।

'जलते जहाज पर' एक यथार्थवादी रचना है। इसमें चित्रित घटनाएँ यथास्थिति मात्र नहीं हैं, बल्कि यथार्थ को आधाार बनाकर समाज की वास्तविकता का जीवन्त चित्रण किया गया है। स्वयं प्रकाश ने जिन घटनाओं और पात्रों के सहारे इस उपन्यास की रचना की है, वे सब उनके बम्बई–प्रवास का यथार्थ है। इस बात का जिक्र उन्होंने अपने साक्षात्कारों, निबन्धों और आत्मकथात्मक पुस्तक 'धूप में नंगे पाँव' में भी किया है। वहाँ के लोगों से जुड़े रिश्तों और मिले हुए प्यार को वे कभी नहीं भूल पाये। 'धूप में नंगे पाँव' की भूमिका में उन्होंने लिखा है— "...अब वो जमाना नहीं रहा, उसके किसी सूरत में लौटने की कोई सम्भावना भी नहीं और तेजी से बदलते इस मतलब परस्त दौर में उसकी स्मृतियाँ भी सुरक्षित नहीं। मसलन सगे रिश्तों से बढ़कर परवान चढ़ती दोस्तियाँ और रूमानियत की दिलफरेब वादियों में ले जाती मोहब्बतें। कड़ियल स्वाभिमान में पलटियाँ खाता नौजवानी का फिटमारापन और वस्तुओं से कहीं ऊपर जिन्दगी को पामाल करता कलाओं का रूहानी सुरूर!"[5] इनमें से कई दोस्त, कई यादें और नौजवानी का एक आम हिस्सा बम्बई से सम्बद्ध है। मदन, जमीला, जतीन या नमिता काल्पनिक पात्र नहीं, बल्कि स्वयं प्रकाश के वैसे ही मित्र हैं, जिनपर उन्हें नाज है। यथार्थ की इन घटनाओं को लेखक ने विचारों की आँच पर सिझाया है, सैद्धान्तिक दृष्टि से परखा है तब जाकर साहित्यिक भाव–भूमि पर, पुनर्सृजन किया है।

स्वयं प्रकाश ने बम्बई के हर रईसी इलाकों को साफ–साफ देखा था, चाहे जुहू हो या बम्बई सेण्ट्रल, चर्चगेट हो या शांताक्रुज, मरीन ड्राइव हो या अंधेरी। सबकी गतिविधियों को, लोगों के रहन–सहन को, ठाठ–बाट को गौर से देखा था। वहीं दूसरी ओर, जहालत और जिल्लत भरी जिन्दगियाँ भी देखी थीं। उपन्यास का नायक दीपक कहता है — "पॉश सोसायटी का हर मूवमेण्ट अपनी आँखों में देखा। ऑफिसर्स के यूरोपीय शिष्टाचार से लेकर ताजमहल होटल के भव्य बेक्वेट तक। फ्लोर डांस, डार्क कॉर्नर्स, कैबरे ··· वीकेण्ड ··· शराब, रेसकोर्स और स्काई स्क्रेपर्स वाली यह बम्बई मदन और बाऊभाई की बम्बई से बिल्कुल अलग थी। मैं दोनों को एक साथ कैसे जी रहा था?"[6]

Copyright © 2020 Authors

'उत्तर जीवन कथा' में स्वयं प्रकाश ने अपनी मौत की कल्पना की है और उसी के आधार पर सारा विवरण–वर्णन प्रस्तुत किया है। कल्पना की आधार–भूमि पर लिखे गये इस उपन्यास में बहुत कुछ कल्पना–प्रसूत है, लेकिन इसकी मूल संवेदना वास्तविक जगत् का यथार्थ है। कल्पना की उड़ान में भी यथार्थवाद पीछे नहीं छूटा है। मानव की चिन्ता ने जिस प्रकार उपन्यासकार को 'ज्योतिरथ के सारथी' और 'जलते जहाज पर' में बेचैन कर दिया है, उसी प्रकार यह चिन्ता इस उपन्यास की रचना का भी प्रेरणा–स्रोत रही है। यही कारण है कि कल्पना में भी उन्हें स्वर्ग उतना प्रिय नहीं लगता है, जितना यह संसार। संसार में प्रेम है, सहानुभूति है, एक–दूसरे के दुःख–दर्द को अनुभव करने की चेतना है। इसलिए यह संसार लेखक को अनायास अपनी ओर आकृष्ट करता है। मानव–सभ्यता के विकास और धरती को स्वर्ग से अधिक सुन्दर बनाने का आधार है प्रेम और संघर्ष, जिसका जिक्र करते हुए कहा गया है— "स्वर्ग में सिवा आनन्द के कुछ नहीं। और आनन्द की शाश्वत निरन्तरता से अधिक उबाऊ कुछ नहीं। मजा किसी चीज को पाने में नहीं, उसके लिए संघर्ष करने में है। मिलने में नहीं, लड़खड़ाने, गिरने, फिर–फिर उठने और दौड़ पड़ने में है। मजे की बात है तैरना, और सो भी धारा के खिलाफ। बहता तो कचरा है।"[7] स्वर्ग के आनन्द की कल्पना में लेखक ने धरती के संघर्ष से, यथार्थ से पलायन नहीं किया है। स्वर्ग में भी जब प्रेमचन्द से उनकी बातें होती हैं, तो वे धरती के बारे में ही उन्हें बतलाते हैं। मानव की कमजोरियों और वैज्ञानिक तरक्की के परिणामस्वरूप उत्पन्न विकृतियों से अवगत कराते हुए स्वयं प्रकाश राजेन्द्र सिंह बेदी से कहते हैं— "जैसे–जैसे हम प्रकृति से दूर होते गये हैं, हमारी प्राकृतिक सुन्दरता नष्ट होती गई है, कपड़े, मेकअप और शर्म उतारते ही हम निहायत बदसूरत रह जाते हैं।"[8] लेखक की यह यथार्थवादी दृष्टि संवेदना–संवलित है, जो यथार्थ के गहरे अनुभव से उत्पन्न है। इस दृष्टि को प्राप्त करने के लिए समाज और समय के संघर्ष से जुड़ना पड़ता है। कथाकार स्वयं प्रकाश इस संषर्ष से कतराकर कभी भागते नहीं हैं, इसलिए उनका सामाजिक बोध काफी विश्वसनीय जान पड़ता है। अपने उपन्यासों में वे जिस परिवेश का चित्रण करते हैं वह यथार्थपूर्ण प्रतीत होता है। इस सन्दर्भ में राजेन्द्र यादव अपने सैद्धान्तिक विवेचन में जिसे स्वीकार करते हैं, वह 'उत्तर जीवन कथा' के यथार्थवादी प्रसंग में भी अनुकूल प्रतीत होता है— "व्यक्ति को उसके सामाजिक, ऐतिहासिक, पारिवारिक परिवेश से अलग न करने की यथार्थ दृष्टि अर्थात् समग्रता में देखने का आग्रह, तभी सफल हो सकता है जब कथाकार व्यक्ति और परिवेश दोनों से तादात्म्य स्थापित कर सके, या ऐसे परिचित परिवेश से व्यक्ति को उठाये कि तत्काल उसका तादात्म्य प्राप्त कर ले।"[9]

'बीच में विनय' भारतीय वामपंथी राजनीति के सिद्धान्त और व्यवहार के अन्तर को और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होनेवाली विडम्बनाओं और विभेदों को यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत करने वाला उपन्यास है। वामपंथी नेताओं में आपसी एकता न होने के कारण फूट पड़ गयी। साम्यवादी राजनीति अपने मूल सिद्धान्तों से ही भटक गयी। नेतागण निहित स्वार्थों के कारण जनता के दुःख–दर्दों से बेपरवाह रहे। वे अन्य पार्टी नेताओं की तरह ही राजभवन और संसद भवन में पहुँचने के लिए हर तिकड़म करते रहे। परिणामतः जमीन से कटते गये। जनता ने भी उन नेताओं को ठुकरा दिया। पार्टी कोई खास मुकाम हासिल नहीं कर पायी। पार्टी–मेंबरों की संख्या बढ़े, इसके लिए काम किया गया, लेकिन मेंबर, सच्चा कम्युनिस्ट बने, ऐसा कुछ नहीं हो पाया। लेखक का मानना है— "... हमारे यहाँ कम्युनिस्ट पार्टियाँ बनाने की कोशिश तो बहुत की गई है, लेकिन कम्युनिस्ट बनाने की कोशिश लगभग नहीं के बराबर की गई है। यह मानकर चला गया है कि कोई कम्युनिस्ट पार्टी में आ गया तो कम्युनिस्ट तो बन ही जाएगा। बल्कि यह तक मानकर चला गया कि जब कोई कम्युनिस्ट पार्टी में आ गया तो अपने आप कम्युनिस्ट बन ही गया। उसमें बनाना क्या है? अर्थात् मूल रूप से एक साधारण आदमी में और कम्युनिस्ट में कोई अन्तर नहीं है। यह सोच थी और शायद है।"[10]

पार्टी आधारित राजनीति से इतर कॉलेज जैसे शैक्षणिक संस्थान की राजनीति, कॉलेज का पूरा माहौल, भ्रष्टाचार, छल–छद्म और नैतिकहीनता का यथार्थ यहाँ प्राणिकता के साथ व्यक्त किया गया है। विनय और ऋचा के प्रेम के माध्यम से शिक्षित मध्यवर्ग की मानसिकता को स्पष्ट करने की कोशिश की गयी है। अंग्रेजी के प्राफेसर, आधुनिक और कम्युनिज्म की क्रान्तिकारी विचारधारा को मानने वाले भुवनेश चतुर्वेदी प्रेम और पारिवारिक सम्बन्धों के मामले में काफी पुराने विचारों को मानने वाले प्राणी हैं। मुख्यतः एक आयामी रचना होने के साथ–साथ यह उपन्यास भुवनेश के पारिवारिक द्वन्द्व को भी उभारता है। इस रूप में लेखक ने भारतीय समाज की रूढ़िवादिता का यथार्थ चित्रण किया है। प्रसिद्ध आलोचक परमानन्द श्रीवास्तव के अनुसार— *"बीच में*

Copyright © 2020 Authors

विनय का यथार्थवाद वह यथार्थवाद है जो वस्तु प्रत्यक्ष तक सीमित है। वह सुनिश्चित और तर्कसंगत है, जबकि विसंगति से भी कथा बहुआयामी बनती है। बहुध्वन्यात्मकता की गुंजाइश नहीं है, पर इकहरी कथा का भी अपना तर्क होता है। सीधी अर्थमयता भी उपन्यास के दायरे में कोई वर्जित फल नहीं है। बाख्तिन ने भी स्पेस और समय में सीमित कथा को अर्थवान बताया है। बेशक इस सीधी कथा में वक्रता की संभावना क्षीण है। पर यहाँ भी कथा का पहला अर्थ शायद अंतिम अर्थ नहीं है।"[11] 'बीच में विनय' का कथानक इकहरा जरूर है, लेकिन इसका यथार्थबोध व्यापक और गहरा है।

लेखक ने 'ईंधन' नामक उपन्यास की रचना यथार्थवादी धरातल पर की है। बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दो दशकों के यथार्थ को उन्होंने कथानक में पिरोकर प्रस्तुत किया है। भारत के छोटे शहरों पर आधुनिकता का प्रभाव किस कदर पड़ रहा था, इसका अनुभव लेखक को भली–भाँति था। बाजारवाद और उपभोक्तावाद ने पूरे देश को अपनी गिरफ्त में ले लिया था। नव पूँजीवाद का महल खड़ा होता जा रहा था। इसी के परिणामस्वरूप मध्यवर्गीय आय वाला युवक रोहित और एक बहुत बड़ी कम्पनी के बड़े अधिकारी की इकलौती पुत्री स्निग्धा जब प्रेम–विवाह करते हैं तब दोनों को अपने बीच एक बहुत बड़ी खाई नजर आती है। कहने को उन्होंने प्रेम–विवाह किया था, लेकिन दोनों के बीच आजन्म प्रेम नाम का तत्त्व स्थापित नहीं हो पाता है। इसकी वजह है दोनों के पूर्वगत 'संस्कार' तथा 'स्टैंडर्ड ऑफ लीविंग'। यह विकासशील भारत की सच्ची तस्वीर है, जिसे स्वयं प्रकाश ने उकेरा है। 'विकास' के नाम पर अंधी दौड़ की प्रवृत्ति को उन्होंने देश के लिए घातक माना है। इसी का परिणाम है कि देश में जहाँ लाखों लोग भूखे मरने को विवश हैं, लाखों युवा बेरोजगार भटक रहे हैं अथवा योग्यता के अनुसार उन्हें ढंग की नौकरी नहीं मिल पा रही है या मुनाफे के लोभ में देशी और विदेशी कम्पनियाँ उनसे नाजायज काम ले रही हैं। देश की जनता को मुख्य मुद्दों से भटकाकर राजनीतिक पार्टियाँ, केन्द्र तथा राज्य सरकारें और कुछ असामाजिक तत्त्व राम मंदिर और बाबरी मस्जिद की आग सुलगाते और अपनी रोटियाँ सेंकते हैं। इस दौरान कई हिन्दू–मुस्लिम दंगे हुए, जिनके परिणामस्वरूप तबाह हुए परिवारों की वेदना को लेखक ने संकेत के रूप में बतलाया है। देश के इस बड़े यथार्थ का उन्होंने गहराई से अनुभव किया था, लेकिन जल्दबाजी के कारण इसे आदर्श का चोला पहनाकर भावुकता के शिकार हो जाते हैं। यदि उपन्यास इस दोष से बच पाता, तो उसका अन्त काफी संकेतात्मक हो सकता था। इसके बावजूद उपन्यासकार ने यथार्थवाद को बड़ी शिद्दत के साथ अभिव्यक्त किया है जिसकी झाँकी हम अनेक प्रसंगों में देख सकते हैं। छोटे शहर से लेकर बम्बई और फिर अमेरिका तक के जीवन का यथार्थ प्रामाणिक रूप से उभरकर सामने आया है। रोहित और स्निग्धा का एक मात्र पुत्र निखिल की मौत के बाद एक प्रसंग में चित्रित यथार्थ और संवेदना का संवलित रूप हमारे हृदय को झकझोर कर रख देता है, जो इस उपन्यास का सार–तत्त्व भी है और प्रेरणा–स्रोत भी। रोहित की सोच के रूप में लेखक का चिन्तन कहता है— "पापा तो मन ही मन मुझे ही दोष दे रहे होंगे। वह तो यही समझ रहे होंगे कि मैंने ही इन हथियारों से अपने और स्निग्धा के बेटे की हत्या की है। पापा कभी नहीं समझ पाएँगे कि हमारी दुनिया एक विशाल दैत्याकार दमन भट्ठी बन चुकी है और हम तीनों अपने जैसे हजारों–लाखों की तरह उसमें ईंधन की तरह झोंक दिये गये हैं। बेटू छोटा था, भस्म हो गया। हमारे पूरी तरह भस्म होने में अभी कुछ और समय लगेगा।"[12]

भूमंडलीकरण, निजीकरण, सट्टा बाजार, मुनाफाखोरी, भ्रष्टाचार, सरकार की उदासीनता, नौकरशाही जैसी व्यवस्थाओं ने देश की बुनियाद हिलाकर रख दी; जिनका विस्तृत तो नहीं, लेकिन यथास्थान सांकेतिक चित्रण यथार्थपूर्ण दृष्टि से उपन्यास में किया गया है। इन सबके कारण और परिणाम की ओर से भी पाठक को सचेत किया गया है। एक प्रसंग में कहा गया है— "आठवीं कक्षा का बच्चा भी समझ जाएगा कि जिस देश के लोग मन्दिर बनाने की खातिर एक–दूसरे का गला काट रहे हों। जहाँ घोटालों पर घोटाले हो रहे हों और जहाँ दस साल में छह–छह बार प्रधानमंत्री बदल रहे हों, वहाँ अब समझदारी इसी में है कि वही करो जो कदरोलकर कह रहा है? हमें ऐसे धंधे में जाना चाहिए जो भले छोटा हो, पर स्वतंत्र, नियमित, स्थानीय और स्वावलम्बी हो। जहाँ अपनी रोटी खाने के लिए दूसरे के मूड पर निर्भर न रहना पड़े।"[13] निजी कम्पनियों और सरकारी तंत्रों की भ्रष्ट नीतियों के साथ–साथ कम्प्यूटर के विकास के कारण नष्ट होते छोटे–छोटे उद्योगों और पारम्परिक व्यापारों के माध्यम से विकासशील भारत का नग्न यथार्थ यहाँ प्रस्तुत किया गया है। यथार्थवाद का भयावह दृश्य उपस्थित करनेवाला एक और चित्र देखा जा सकता है— "लेकिन समय मेरे अनुकूल नहीं था। बाजार में मंदी थी। देश में घोटालों पर घोटाले हो रहे थे। आयात में नित नयी छूटें दी जा रही थीं। केन्द्र में मिलीजुली सरकार थी जो निर्णय लेने से डरती थी। निवेशकों में उत्साह नहीं था। सरकार जितनी डाँवाडोल थी उसकी आर्थिक नीतियाँ उससे भी ज्यादा डाँवाडोल थीं। शेयर बाजार एक घायल साँड की तरह था जो पूरा

Copyright © 2020 Authors

जोर लगाने के बावजूद उठकर खड़ा नहीं होता था। छोटे निवेशकों का विश्वास बाजार की शक्तियों पर से पूरी तरह उठ गया था। ... अनाज के गोदाम सड़ रहे थे और किसान आत्महत्या कर रहे थे। कुल मिलाकर चारों तरफ सुस्ती और पस्ती का माहौल था।"[14]

स्वयं प्रकाश के सभी उपन्यासों में यथार्थवादी दृष्टि की झलक मिलती है। 'ज्योतिरथ के साथी' और 'जलते जहाज पर' उनके आरम्भिक उपन्यास हैं, फिर भी उनमें यथार्थवाद का व्यापक रूप नजर आता है। मालवा क्षेत्र की साम्यवादी राजनीति से लेकर मायानगरी बम्बई और फिर अमेरिका तथा स्वर्ग तक के वर्णन में कहीं भी यथार्थवाद पीछे नहीं छूटा है। उनका यथार्थवाद अनुभव से अनुप्राणित है, जिसके कारण कथा–वर्णन में प्रामाणिकता झलकती है। सभी स्थानों और परिवेशों का यथार्थ चित्रण ही उन्हें विश्वसनीय और श्रेष्ठ कथाकार बनाता है।

I UnHk& I ph %

1. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2007 ई॰, दशम खण्ड, पृ॰ सं॰–146–147.
2. मैनेजर पाण्डेय, आलोचना की सामाजिकता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2012 ई॰, पृ॰ सं॰–243.
3. स्वयं प्रकाश, ज्योतिरथ के सारथी, धरती प्रकाशन, बीकानेर, प्रथम संस्करण, 1982 ई॰, पृ॰ सं॰–66.
4. वही, पृ॰ सं॰–34–35.
5. स्वयं प्रकाश, धूप में नंगे पाँव, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2019 ई॰, भूमिका, पृ॰ सं॰–7.
6. स्वयं प्रकाश, जलते जहाज पर, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, प्रथम संस्करण, दिसम्बर 1982 ई॰, पृ॰ सं॰–32.
7. स्वयं प्रकाश, उत्तर जीवन कथा, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–1993 ई॰, पृ॰ सं॰–27.
8. वही, पृ॰ सं॰–50.
9. राजेन्द्र यादव, कहानी : स्वरूप और संवेदना, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2013 ई॰, पृ॰ सं॰–78.
10. स्वयं प्रकाश, बीच में विनय, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2002 ई॰, पृ॰ सं॰–201–201.
11. पल्लव (सम्पादक), बनास, प्रवेशांक, बसन्त 2008 ई॰, परमानन्द श्रीवास्तव का आलेख– 'एक राजनीतिक उपन्यास के निहितार्थ', पृ॰ सं॰–229.
12. स्वयं प्रकाश, ईंधन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2008 ई॰, पृ॰ सं॰–233.
13. वही, पृ॰ सं॰–249.
14 वही, पृ॰ सं॰–258.

Copyright © 2020 Authors